

न्याय का प्रमाणशास्त्र - प्रत्यक्ष

By- Dr. Arun Kumar Sinha
Asso. Professor, Philosophy Department
Raja Singh College, Siwan
(For Part- 1 Hons./Subs. Students)

न्याय दर्शन में चार प्रकार के प्रमाण माने गए हैं - **प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।**

प्रत्यक्ष(Perception)

प्रत्यक्ष न्याय दर्शन का पहला प्रमाण है। न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष का सर्वाधिक महत्व है और इसपर गम्भीरता से विचार किया गया है।

प्रत्यक्ष शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है - 'प्रति' और 'अक्ष'। प्रति का अर्थ होता है सामने और अक्ष का अर्थ होता है आँख, इस तरह प्रत्यक्ष का शाब्दिक अर्थ होता है आँखों के सामने। यह प्रत्यक्ष का संकीर्ण अर्थ है जब इसे बृहत् अर्थों में लिया जाता है तब इसका मतलब होता है, "वे समस्त ज्ञान जो ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त किये जाते हैं प्रत्यक्ष कहलाता है"। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं - आँख, नाक, कान त्वचा और जीभ। इनसे क्रमशः भिन्न-भिन्न तरह का ज्ञान प्राप्त होता है - आँख से रूप अर्थात् देखने का, नाक से गंध अर्थात् सूँघने का, कान से शब्द अर्थात् सुनने का, त्वचा से स्पर्श छूने का और जीभ से रस अर्थात् स्वाद का। इस तरह सभी ज्ञान जो ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होते हैं वे प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाते हैं।

यह ज्ञान सन्देहरहित होता है। यह हमें यथार्थ और निश्चित ज्ञान देता है। इसे प्रमाणित करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए कहा गया है, "**प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्**", अर्थात् प्रत्यक्ष को प्रमाणित करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। इसे प्रमाणों का प्रमाण भी कहा जाता है। अन्य सभी ज्ञान के साधन जैसे - अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति आदि किसी न किसी तरह प्रत्यक्ष पर ही आश्रित होते हैं।

न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम ने प्रत्यक्ष को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "**इन्द्रियार्थसन्निकर्षतपन्न ज्ञानंव्यपदेशयमन्यभिचारी व्यवस्थात्मकम् प्रत्यक्षम्**", अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न होने वाला वह ज्ञान जो असंगदिग्ध तथा यथार्थ हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। इस परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि प्रत्यक्ष में - 1. इन्द्रिय 2. पदार्थ या वस्तु 3. सन्निकर्ष अर्थात् वस्तु सम्बन्ध 4. असंगदिग्धता 5. यथार्थता की

आवश्यकता होती है। यदि किसी टेबल पर कोई पुस्तक हो जिसे मैं आंखों से देख रहा हूँ तो इस में कोई संदेह नहीं है क्योंकि आँख और पुस्तक के बीच सम्बन्ध है और इसका ज्ञान हो रहा है। दूर से देखने पर यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि पुस्तक है या कॉपी है तब भी हमारा ज्ञान असंगदिग्ध रहता है। कभी-कभी असंगदिग्ध होते हुए भी ज्ञान यथार्थ नहीं होते जैसे रस्सी को देखकर सांप समझ लेना। देखने में जिस समय रस्सी को देखा जाता है उस समय वह सांप समझ में आता है क्योंकि यह भ्रम की स्थिति होती है। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान को यथार्थ भी होना चाहिए।

प्रत्यक्ष ज्ञान में वस्तु और इंद्रिय का संपर्क आवश्यक माना गया है इसलिए न्याय - सिद्धांत मुक्तावली में कहा भी है - **इंद्रियजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्**। किंतु कुछ विचारक इससे सहमत नहीं है उनके अनुसार इंद्रिय और वस्तु के संपर्क ना होने पर भी प्रत्यक्ष संभव है भ्रम की स्थिति में व्यक्ति रस्सी को देखता है और उसे सर्प का ज्ञान होता है इंद्रिय का संबंध तो रस्सी से होता है किंतु ज्ञान उसका होता है जो इंद्रिय से संबंधित नहीं है इसके अलावा ईश्वर को सभी वस्तुओं का ज्ञान होता है जबकि उसे एक भी इंद्रिय नहीं है। मन में सुख दुख का ज्ञान होता है जबकि इसे इंद्रियों के कोटि में नहीं रखा जाता। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्ष के लिए इंद्रिय और वस्तु का संबंध उतना आवश्यक नहीं है जितना कि साक्षात्कार का। साक्षात्कार पर बल देते हुए दुर्गेश उपाध्याय ने तत्त्व चिंतामणि में कहा है कि -
ज्ञानकरणकन ज्ञानं (प्रत्यक्ष)।

प्रत्यक्ष के दो प्रकार माने गए हैं - **1. लौकिक प्रत्यक्ष 2. अलौकिक प्रत्यक्ष।** प्रत्यक्षीकरण में जब इंद्रिय और वस्तु का संबंध साधारण ढंग से होता है तो उसे लौकिक प्रत्यक्ष करते हैं जैसे गुलाब लाल है इसकी जानकारी गुलाब को देखने से होती है यह लौकिक प्रत्यक्ष है। पशुत्व जैसे गुण के प्रत्यक्षीकरण में हमें कुछ पशुओं का साक्षात्कार होता है फिर भी हमें सभी पशुओं का ज्ञान हो जाता है तो इसे अलौकिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

लौकिक प्रत्यक्ष - जैन, वैशेषिक एवं मीमांसा की तरह न्याय दर्शन में भी ज्ञानेंद्रियां छः मानी गई हैं - नाक, जीभ, आंख, त्वचा, कान तथा मन। इन इंद्रियों में से प्रथम पांच अर्थात् नाक, जीभ, आंख, त्वचा और कान, से बाह्य रूप का प्रत्यक्षीकरण होता है इसलिये है इसे बाह्य प्रत्यक्ष कहते हैं। मन को हम बाह्य ढंग से नहीं देख पाते फिर भी इससे सुख दुख का अनुभव होता है इसलिए इसे मानस प्रत्यक्ष कहा जाता है।

लौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद माने गए हैं - **निर्विकल्प प्रत्यक्ष, सविकल्प प्रत्यक्ष तथा प्रत्यभिज्ञा**। निर्विकल्प प्रत्यक्ष में ज्ञान अस्पष्ट होता है जबकि सविकल्प प्रत्यक्ष में स्पष्ट प्राप्त होता है। निर्विकल्प और सविकल्प प्रत्यक्ष में वस्तु अथवा वस्तु की आत्मा एक ही रहती

है परन्तु अंतर इस बात का होता है निर्विकल्प प्रत्यक्ष में वस्तु अनाख्यात या अव्यक्त रहती है जबकि सविकल्प प्रत्यक्ष में वह आख्यात या व्यक्त रहती है।

निर्विकल्प प्रत्यक्ष - इसमें जो कुछ भी जानकारी होती है वह अस्पष्ट रहती है। रात में हमें कुछ दूरी पर एक छाया दिखाई पड़ती है किंतु यह किस चीज की छाया है यह कोई आदमी है या कोई स्तंभ है यह ज्ञात नहीं हो पाता केवल छाया का अस्पष्ट प्रत्यक्षीकरण निर्विकल्प प्रत्यक्ष कहलाता है। यही बात अन्य इंद्रियों से प्रत्यक्षीकरण करते समय होती है जैसे कोई आवाज कान तक पहुंचती है परंतु हम यह नहीं समझ पाते यह किसकी आवाज़ है इसी अस्पष्टता की स्थिति को निर्विकल्प कहा जाता है, यहां हमें किसी भी विशेष का बोध नहीं होता जैसे - छाया है पर किस की छाया है, आवाज है पर किसकी आवाज है, गंध है पर किस चीज की गंध है, स्पर्श हैं लेकिन किसका स्पर्श हो रहा है, स्वाद प्राप्त हो रहा है किंतु किस वस्तु का यह स्वाद है, इसकी जानकारी नहीं होती जो कुछ भी हमें ज्ञात होता है वह अस्पष्ट होता है, अविकसित होता है और अनाख्यात होता है।

सविकल्प प्रत्यक्ष - यहां वस्तु का प्रत्यक्षीकरण होता है और व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाता है की उसे किस वस्तु का प्रत्यक्षीकरण हो रहा है। निर्विकल्प प्रत्यक्ष में मात्र छाया का बोध होता है किंतु जब यह भी बोध होता है की छाया किसी मनुष्य की है या स्तंभ की है तब यही सविकल्प की स्थिति होती है। यहां विकल्प का ज्ञान हो जाता है, वस्तु की जानकारी विशेष रूप से हो जाती है यदि किसी गंध का प्रत्यक्षीकरण हो रहा है तब प्रत्यक्षीकरण करने वाले को मात्र इतना ही बोध नहीं होता कि गंध आ रही है बल्कि वह यह भी जान जाता है कि यह गंध किस फूल या किस तेल की है। इस तरह स्पष्ट, आख्यात एवं विकसित प्रत्यक्ष को सविकल्प प्रत्यक्ष कहा जाता है।

प्रत्यभिज्ञा - प्रत्यभिज्ञा का अर्थ होता है पहचानना। भूत काल में देखी हुई वस्तु को वर्तमान में पहचान लेना ही प्रत्यभिज्ञा कहलाता है। इसमें अतीत और वर्तमान का समन्वय रहता है। भूत काल में जिसका प्रत्यक्ष बोध हुआ था, यदि वह पुनः दिखाई दे देता है तब हम बोल देते हैं कि, "यह वही है"। इस तरह के ज्ञान को प्रत्यभिज्ञा ज्ञान कहा जाता है।

अलौकिक प्रत्यक्ष - वस्तु और इंद्रिय के बीच असाधारण ढंग से होने वाले संपर्क के कारण जो प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उसे अलौकिक प्रत्यक्ष कहा जाता है। इस प्रत्यक्ष का उदय अलौकिक सन्निकर्ष से होता है। अलौकिक प्रत्यक्ष के भी तीन प्रकार हैं - **सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण और योगज।**

सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष - जिस प्रत्यक्ष से जाति का प्रत्यक्ष होता है उसे सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहा जाता है। मनुष्य मरणशील है यह जब कहा जाता है तब एक-एक कर

सभी मनुष्यों को नहीं देखा जाता है, सभी मनुष्यों को मरते हुए देखना सम्भव भी नहीं है बल्कि कुछ मनुष्यों के मरते हुए देख कर उसमें मनुष्य का सामान्य लक्षण मनुष्यत्व है इसे देखा जाता है और मनुष्यत्व के अन्दर मरणशीलता भी आती है। इस तरह किसी विशेष को उसके सम्पूर्ण जाति के प्रत्यक्षीकरण को सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहा जाता है।

ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष - ज्ञान लक्षण अलौकिक प्रत्यक्ष का वह रूप है जिसके द्वारा इन्द्रिय अपने - अपने विषय से भिन्न विषय का ज्ञान प्राप्त करती है। कोई पत्थर ठोस है, यह त्वचा से होने वाला ज्ञान है पर इसके ठोसपन का बोध आँख से देखकर ही हो जाता है, उसी तरह बर्फ को देखकर उसके ठंडेपन का बोध हो जाता है। इस तरह के प्रत्यक्ष को ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष कहा जाता है। पश्चात्य दर्शनिकों में वुन्ट, वार्ड और स्टाउट ने भी इसकी मान्यता दी है और इसे मिश्रित प्रत्यक्ष कहा है।

योगज - यह प्रत्यक्ष योगी लोगों को होता है इसलिए इसे योगज प्रत्यक्ष कहा जाता है। योगी असाधारण व्यक्ति होते हैं, यह ज्ञान उनमें पाया जाता है जिससे वे भूत वर्तमान एवम भविष्य के सभी प्रकार के वस्तुओं का अनुभव करने लगते हैं। यह प्रत्यक्षीकरण सामान्य व्यक्तियों को नहीं होता, इसे अभ्यास से प्राप्त किया जाता है जिसे योगी करते हैं। जो साधक योग में पूर्णता प्राप्त कर लिए होते हैं उनके लिए यह ज्ञान शाश्वत और अपने आप हो जाता है परन्तु जिन्हें पूर्णता प्राप्त नहीं होता उन्हें ध्यान लगाने की आवश्यकता होती है।